

सर्वं प्रोक्त्वा नृपस्याग्रे रक्षितः शुभयोगतः। लोके पुण्यवतां पुंसां सर्वे कुर्वन्ति रक्षणम् ॥२२॥
 इत्थं ज्ञात्वा बुधैश्चित्ते कुस्त्रीवृत्तं सुदारुणम्। कार्यं कष्टकराणां हि विषयाणां विचारणम् ॥२३॥
 धन्यास्ते मुनयो जिनेन्द्रकथितैः शीलव्रतैर्मण्डिताः कामक्रूरकरीन्द्रदुर्जयघटावित्रासकण्ठीरवाः।
 ज्ञानध्यानरता विरक्तहृदया भव्याब्जसद्भास्कराः संसारार्णवतारणेतिचतुराः कुर्युः सतां मंगलम् ॥२४॥

इति कथाकोशे वीरवतीकथा समाप्ता।

३३. सुरतभूपस्य कथा

इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्कैः समर्चितपदद्वयम्। भक्त्या नत्वा जिनं वक्ष्ये वृत्तं सुरतभूपतेः ॥१॥
 अयोध्यानगरे राजा सुरताख्यो महानभूत्। सती नाम्नी महादेवी योषित्वञ्चशताग्रणीः ॥२॥

है या झूठ, इसकी कुछ विशेष तलाश न की जाकर एकदम उसके मारने का हुक्म दिया गया। पर यह सबको ध्यान में रखना चाहिए कि जब पुण्य का उदय होता है तब मृत्यु के समय भी रक्षा हो जाती है। पाठकों विनोदी सहस्रभट की याद होगी। यह वीरवती के अन्तिम कुकर्म तक उसके आगे पीछे उपस्थित रहा है। उसने सच्ची घटना अपनी आँखों से देखी है। वह इस समय यहीं उपस्थित था। राजा का दत्त के लिए मारने का हुक्म सुनकर उससे न रहा गया। उसने अपनी कुछ परवाह न कर सब सच्ची घटना राजा से कह सुनाई। राजा सुनकर दंग रह गया। उसने उसी समय अपने पहले हुक्म को रद्द कर निरपराध दत्त को रिहाई दी और वीरवती को उसके अपराध की उपयुक्त सजा दी। सच है **पुण्यवानों की सभी रक्षा करते हैं।** दुष्ट स्त्रियों का ऐसा घृणित और कलंकित चरित देखकर सबको उचित है कि वे दुःख देने वाले विषयों से अपनी सदा रक्षा करें ॥२१-२३॥

वे महात्मा धन्य है जो भगवान् के उपदेश किए हुए पवित्र शीलव्रत से विभूषित है, कामरूपी क्रूर हाथी को मारने के लिए सिंह है, विषयों को जिन्होंने जीत लिया है, ज्ञान, ध्यान, आत्मानुभव में जो सदा मग्न हैं, विषयभोगों से निरन्तर उदास हैं, भव्यरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने में जो सूर्य हैं और संसार समुद्र से पार करने में जो बड़े कर्मवीर खेवटिया हैं वे सबका कल्याण करें ॥२४॥

३३. सुरत राजा की कथा

देवों द्वारा पूजा किए गए जिनभगवान् के चरणों को भक्ति सहित नमस्कार कर सुरत नाम के राजा का हाल लिखा जाता है ॥१॥

सुरत अयोध्या के राजा थे। इनके पाँच सौ स्त्रियाँ थीं। उनमें पट्टरानी का पद महादेवी सती को प्राप्त था। राजा का सती पर बहुत प्रेम था। वे रात दिन भोगों में ही आसक्त रहा करते थे, उन्हें राज-काज की कुछ चिन्ता न थी। अन्तःपुर के पहरे पर रहने वाले सिपाही से उन्होंने कह रखा था कि जब कोई खास मेरा कार्य हो या कभी कोई साधु-महात्मा यहाँ आवें तो मुझे उनकी सूचना देना। वैसे कभी कुछ कहने को न आना ॥२॥

स तस्यां भूपतिर्नित्यं भोगासक्तैकमानसः। प्रतीहारं प्रति प्राह भो त्वया द्वारपालक ॥३॥
 समायाते महाराज-कार्ये च मुनिसत्तमे। स्तवनीयं मम व्यक्तं नान्यत्किञ्चित्कदाचन ॥४॥
 इत्युक्त्वान्तःपुरं शीघ्रं प्रविश्य परया मुदा। भुञ्जानो विविधान्भोगान्संस्थितो तृप्तिकारकान् ॥५॥
 एकदा पुण्ययोगेन मन्दिरे तस्य भूपतेः। दमदत्तो धर्मरुचिर्मुनी मासोपवासिनौ ॥६॥
 चर्यार्थं तौ समायातौ दृष्ट्वासौ द्वारपालकः। कुर्वन्तं तिलकं सत्या वक्राब्जे मण्डिते तराम् ॥७॥
 नत्वा तं सुरतं भूपं संजगौ भो महीपते। समायातौ मुनीन्द्रौ द्वौ सुरेन्द्रार्चितपङ्कजौ ॥८॥
 इत्याकर्ण्य प्रभुः सोपि हे प्रिये तिलकस्तव। यावच्छुष्यति नैवात्र तावद्भक्त्या मुनीन्द्रयोः ॥९॥
 आहारं कारयित्वोच्चैरागमिष्यामि सत्वरम्। प्रोक्त्वेति सुरतो धीमान्स्थापयित्वा मुनीश्वरौ ॥१०॥
 नव पुण्यैः समायुक्तं ताभ्यामाहारमुत्तमम्। ददौ भक्त्या गुणैर्युक्तो भूरिशर्माकरं परम् ॥११॥
 दानपूजाव्रतोपेतः शोभते श्रावकोत्तमः। तैर्विहीनो नरो नैव भाति वा निष्फलो द्रुमः ॥१२॥
 तस्माद्दानं त्रिधा पात्रे पूजां श्रीमज्जिनेशनः। स्वव्रतं शर्मणे शक्त्या संभजन्तु सदा बुधाः ॥१३॥
 तस्मिन्काले सती सापि मुनि निन्दोरुपापतः। उदंचरमहाकुष्टकष्टराशिप्रपीडिता ॥१४॥
 वरं हालाहलं भुक्तमेकजन्मभयप्रदम्। नैव निन्दा मुनीन्द्राणां जन्मकोटिषु कष्टदा ॥१५॥
 ये नित्यं व्रतशीलाद्यैर्मण्डिता मुनिनायकाः। सन्मार्गदीपका प्रायास्ते निन्द्यन्ते कथं भुवि ॥१६॥

एक दिन पुण्योदय से एक महीने के उपवासे दमदत्त और धर्मरुचि मुनि आहार के लिए राजमहल में आए। उन्हें देखकर द्वारपाल राजा के पास गया और नमस्कार कर उसने मुनियों के आने का हाल उनसे कहा। राजा इस समय अपनी प्राणप्रिया सती के मुख-कमल पर तिलक रचना कर रहे थे। वे सती से बोले-प्रिये, जब तक कि तुम्हारा तिलक न सूखे, मैं अभी मुनिराजों को आहार देकर बहुत जल्दी आया जाता हूँ। यह कहकर राजा चले आए। उन्होंने मुनिराजों को भक्तिपूर्वक ऊँचे आसन पर बैठाकर नवधा भक्ति-सहित पवित्र आहार कराया, जो कि उत्तम सुखों का देने वाला है। सच है, दान, पूजा, व्रत, उपवासादि से ही श्रावकों की शोभा है और जो इनसे रहित हैं वे फलरहित वृक्ष की तरह निरर्थक समझे जाते हैं। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि वे पात्रदान, जिनपूजा, व्रत, उपवासादिक सदा अपनी शक्ति के अनुसार करते रहें ॥३-१३॥

इधर तो राजा ने मुनियों को दान देकर पुण्य उत्पन्न किया और उधर उनकी प्राणप्रिया अपने विषय सुख के अन्तराय करने वाले मुनियों का आना सुनकर बड़ी दुःखी हुई उसने अपना भला-बुरा कुछ न सोचकर मुनियों की निन्दा करना शुरू किया और खूब ही मनमानी उन्हें गालियाँ दी। सन्तों का यह कहना व्यर्थ नहीं है कि-“इस हाथ दे, उस हाथ ले”। सती के लिए यह नीति चरितार्थ हुई अपने बाँधे तीव्र पापकर्मों का फल उसे उसी समय मिल गया। रानी के कोढ़ निकल आया। सारा शरीर काला पड़ गया। उससे दुर्गन्ध निकलने लगी। आचार्य कहते हैं-हलाहल विष खा लेना अच्छा है, जो एक ही जन्म में कष्ट देता है, पर जन्म-जन्म में दुःख देने वाली मुनि-निन्दा करना कभी अच्छा नहीं क्योंकि सन्त-महात्मा तो व्रत, उपवास, शील आदि से भूषित होते हैं और सच्चे आत्महित का मार्ग

गुरुर्दीपो गुरुर्बन्धु-गुरुः संसारतारकः। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन समाराध्यो गुरुर्बुधैः ॥१७॥
ततो राजा तदासक्तो समागत्य तदन्तिकम्। तस्याः शरीरमालोक्य कुष्टकालाग्निपीडितम् ॥१८॥
संसारदेहभोगेषु विरक्तः सुरतः सुधीः। दीक्षामादाय जैनेन्द्रिं मुनिर्जातो जगद्धितः ॥१९॥
सापि मृत्वा सती नाम्नी दीर्घसंसारमाश्रिता। स्वकीयपुण्यपापस्य फलं भुङ्क्ते जनो ध्रुवम् ॥२०॥

मत्वेति संसृतिचरित्रविचित्रमुच्चैः श्रीमज्जिनेन्द्रकथिते भुवि सारधर्मे।

स्वर्गापवर्गसुखसाधनहेतुभूते कार्या मतिर्बुधजनैः सततं सुखाप्त्यै ॥२१॥

इति कथाकोशे श्रीसुरतराज्ञः कथा समाप्ता।

३४. विषयलुब्धसंसारिजीवस्य कथा

श्रीसर्वज्ञं प्रणम्योच्चैः संसाराम्भोधितारणम्। वक्ष्ये संसारिजीवस्य वृत्तं स्तोकेन दारुणम् ॥१॥
महाटव्यां नरः कोपि भीतो व्याघ्राद्भयानकात्। अन्धकूपे स्थितस्तत्र तृणस्तम्बे विलम्बितः ॥२॥
तथा व्याघ्राहतोत्तुङ्गकूपवृक्षप्रकम्पनात्। प्रोच्छलन्मधुकक्रूरमक्षिकाभिः प्रपीडितः ॥३॥

बताने वाले हैं, वे निन्दा करने योग्य कैसे हों? और ये ही गुरु अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं इसलिए दीपक हैं, सबका हित करते हैं इसलिए बन्धु हैं और संसाररूपी समुद्र से पार कराते हैं इसलिए कर्मशील खेवटिया हैं। अतः हर प्रयत्न द्वारा इनकी आराधना, सेवा-सुश्रुषा करते रहना चाहिए ॥१४-१७॥

जब राजा मुनिराजों को आहार देकर निवृत्त हुए तब अपनी प्रिया के पास आ गए। आते ही जैसे उन्होंने रानी का काला और दुर्गन्धमय शरीर देखा वे बड़े अचंभे में पड़ गए। पूछने पर उन्हें उसका कारण मालूम हुआ। सुनकर वे बहुत खिन्न हुए। संसार, शरीर, भोग उन्हें अब अप्रिय जान पड़ने लगे। उन्हें अपनी रानी का मुनि-निन्दारूप घृणित कर्म देखकर बड़ा वैराग्य हुआ। वे उसी समय सब राज-पाट छोड़कर योगी बन गए और अपना तथा संसार का हित करने में उद्यमी बने ॥१८-१९॥

समय पाकर सती की मृत्यु हुई। अपने पाप के फल से वह संसाररूपी वन में घूमने लगी। सो ठीक ही है, अपने किए पुण्य या पाप का फल जीवों को भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार संसार की विचित्र स्थिति जानकर आत्महित के चाहने वाले सत्पुरुषों को भगवान् के उपदेश किए पवित्र धर्म पर सदा विश्वास रखना चाहिए, जो कि स्वर्ग और मोक्ष के सुख का प्रधान कारण है ॥२०-२१॥

३४. विषयों में फँसे हुए संसारी जीव की कथा

संसार-समुद्र से पार करने वाले सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार कर संक्षेप से संसारी जीव की दशा दिखलाई जाती है, जो बहुत ही भयावनी है ॥१॥

कभी कोई मनुष्य एक भयंकर वन में जा पहुँचा। वहाँ वह एक विकराल सिंह को देखकर डर के मारे भागा। भागते-भागते अचानक वह एक गहरे कुँए में गिरा। गिरते हुए उसके हाथों में एक वृक्ष की जड़ें पड़ गईं उन्हें पकड़ कर वह लटक गया। वृक्ष पर शहद का एक छत्ता जमा था। सो इस मनुष्य के पीछे भागे आते हुए सिंह के धक्के से वृक्ष हिल गया। वृक्ष के हिल जाने से मधुमक्खियाँ